शिवभक्त पिप्पलाद*

दधीचि(या दधीच) नाम से विख्यात एक मुनि थे। वे सभी उत्तम गुणों से सुशोभित थे। उनकी पत्नी श्रेष्ठ वंश की कन्या और पतिव्रता थीं। दधीचि की पत्नी सदा भारी तपस्या में लगी रहती थीं। दधीचि प्रतिदिन अग्नि की उपासना करते और गृहस्थ-धर्म के पालन में तत्पर रहते थे। उनका आश्रम गङ्गा के तट पर था। वे देवता और अतिथियों की सेवा करते, अपनी ही पत्नी में अनुराग रखते और शान्त-भाव से रहते थे। उनके प्रभाव से उस देश में शत्रुओं और दैत्य-दानवों का आक्रमण नहीं होता था।

एक दिन की बात है-दधीचि मुनि के आश्रम पर रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु, यम और अग्नि पधारे। वे दैत्यों को परास्त करके वहाँ आये थे और उस विजय के कारण उनके हृदय में हर्ष की हिलोरें उठ रही थीं। मुनिवर दधीचि को देखकर सब देवताओं ने प्रणाम किया। दधीचि भी देवताओं को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सबका पृथक्-पृथक् पूजन किया, फिर पत्नी के साथ देवताओं के लिये गृहस्थोचित स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध किया। इसके बाद उन्होंने देवताओं से कुशल पूछी और देवता भी उनसे वार्तालाप करने लगे।

देवता बोले-मुने! आप इस पृथ्वी के कल्पवृक्ष हैं। आप-जैसा महर्षि जब हम लोगों पर इतनी कृपा रखता है, तब अब हमारे लिये संसार में कौन-सी वस्तु दुर्लभ होगी। मुनिश्रेष्ठ! जीवित पुरुषों के जीवन का इतना ही फल है कि वे तीर्थों में स्नान, समस्त प्राणियों पर दया और आप-जैसे महात्माओं का दर्शन करें।[1] मुने! इस समय स्नेहवश हम आप से जो कुछ कहते हैं, उसे ध्यान देकर सुनें। हम बड़े-बड़े राक्षसों और दैत्यों को जीतकर यहाँ आये हैं। इससे हम बहुत सुखी हैं। विशेषत: आपका दर्शन करके हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब हमें अस्त्र-शस्त्रों के रखने से कोई लाभ नहीं दिखायी देता। हम उन अस्त्रों का बोझ ढो भी नहीं सकते। हम स्वर्ग में जब इन अस्त्रों को रखते हैं, तब हमारे शत्रु इनका पता लगाकर वहाँ से हड़प ले जाते हैं। इसलिये हम आपके पवित्र आश्रम पर इन सब अस्त्रों को रख देते हैं। ब्रह्मन्! यहाँ दानवों और राक्षसों से तनिक भी भय नहीं है। आपकी आज्ञा से यह सारा प्रदेश पवित्र और सुरक्षित हो गया है। तपस्या द्वारा आपकी समानता करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं। अब हम कृतार्थ होकर इन्द्र के साथ अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। अब इन आयुधों की रक्षा आपके अधीन है।

देवताओं की यह बात सुनकर दधीचि ने कहा-'एवमस्तु'। उस समय उनकी प्यारी पत्नी ने

---

* पिप्पलाद एवं दधीचि की जो कथा यहाँ दी जा रही है उससे भिन्न कथा (सम्भवत: कल्पभेद के कारण)शिव आदि पुराणों में पायी जाती है।

1. **एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम। तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम्।।**

(ब्रह्मपुराण 110/16)

उन्हें रोका–'मुने! यह देवताओं का कार्य विरोध उत्पन्न करनेवाला है। अत: इसमें आपको पड़ने की क्या आवश्यकता है। जो शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके परमार्थ–तत्त्व में स्थित हो चुके हैं, संसार के कार्यों में जिनकी कोई आसक्ति नहीं है, उन्हें दूसरों के लिये ऐसा संकट मोल लेने से क्या लाभ, जिससे न इस लोक में सुख है और न परलोक में। विप्रवर! मेरी बातें ध्यान देकर सुनें। यदि आपने इन आयुधों को स्थान दे दिया तो इन देवताओं के शत्रु आप से भी द्वेष करेंगे। यदि इनमें से कोई अस्त्र नष्ट हुआ या चोरी चला गया तो ये देवता भी कुपित होकर हमारे शत्रु बन जायँगे। अत: मुनीश्वर! आप वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं। आपके लिये इस पराये द्रव्य में ममत्व जोड़ना ठीक नहीं। यदि धन देने की शक्ति हो तो याचक को देना ही चाहिये–उसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यदि धन देने की शक्ति न हो तो साधु पुरुष केवल मन, वाणी तथा शारीरिक क्रियाओं द्वारा दूसरों का कार्य–साधन करते हैं। प्राणनाथ! पराये धन को अपने यहाँ धरोहर के रूप में रखना साधु पुरुषों ने कभी स्वीकार नहीं किया है। इसका उन्होंने सदा बहिष्कार ही किया है। अत: आप यह कार्य न कीजिये।'

अपनी प्यारी पत्नी की यह बात सुनकर ब्राह्मण दधीचि ने कहा–"भद्रे! मैं देवताओं की प्रार्थना पर पहले ही 'हाँ' कह चुका हूँ। अब 'नहीं' कर दूँ तो मुझे सुख नहीं मिलेगा।" पति का कथन सुनकर ब्राह्मणी यह सोचकर चुप हो गयी कि दैव के सिवा और किसी का किसी पर वश नहीं चल सकता। देवता लोग अपने अत्यन्त तेजस्वी अस्त्र आश्रम पर रखकर मुनीश्वर को नमस्कार करके कृतार्थ हो अपने–अपने लोक में चले गये। देवताओं के चले जाने पर मुनि अपनी पत्नी के साथ धर्म में तत्पर हो प्रसन्नतापूर्वक वहाँ रहने लगे। इस प्रकार एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये। तब दधीचि ने अपनी पत्नी से कहा–'देवि! देवता यहाँ से अस्त्र ले जाना नहीं चाहते और दैत्य मुझसे द्वेष करते हैं। अब तुम्हीं बताओ–क्या करना चाहिये?' पत्नी ने विनयपूर्वक कहा–'नाथ! मैंने तो पहले ही निवेदन किया था। अब आप ही जानें और जो उचित हो, सो करें। दैत्यों में जो बड़े–बड़े वीर, तपस्वी और बलवान् हैं, वे इन अस्त्र–शस्त्रों को निश्चय ही हड़प लेंगे।' तब दधीचि ने उन अस्त्रों की रक्षा के लिये एक काम किया–उन्होंने पवित्र जल से मन्त्र पढ़ते हुए अस्त्रों को नहलाया। फिर वह सर्वास्त्रमय परम पवित्र और तेजयुक्त जल स्वयं पी लिया। तेज निकल जाने से वे सभी अस्त्र–शस्त्र शक्तिहीन हो गये, अत: क्रमश: समयानुसार नष्ट हो गये। तदनन्तर देवताओं ने आकर दधीचि से कहा–'मुनिवर! हमारे ऊपर शत्रुओं का महान् भय आ पहुँचा है। अत: हमने जो अस्त्र आपके यहाँ रख दिये थे, उन्हें इस समय दे दीजिये।' दधीचि ने कहा–'आप लोग बहुत दिनोंतक उन्हें लेने नहीं आये। अत: दैत्यों के भय से हमने उन अस्त्रों को पी लिया है। अब वे हमारे शरीर में स्थित हैं। इसलिये

जो उचित हो, वह कहें।' यह सुनकर देवताओं ने विनीत भाव से कहा–'मुनीश्वर! इस समय तो हम इतना ही कह सकते हैं कि अस्त्र दे दीजिये।' दधीचि ने कहा–'सब अस्त्र मेरी हड्डियों में मिल गये हैं। अतः इन हड्डियों को ही ले जाओ।' उस समय प्रिय वचन बोलनेवाली दधीचि की पत्नी प्रातिथेयी उनके पास नहीं थी। देवता उनसे बहुत डरते थे। उन्हें न देखकर दधीचि से बोले–'विप्रवर! जो कुछ करना हो, शीघ्र करें।' दधीचि ने अपने दुस्त्यज प्राणों का परित्याग करते हुए कहा–'देवताओं! तुम सुखपूर्वक मेरा शरीर ले लो। मेरी हड्डियों से प्रसन्नता प्राप्त करो।[1] मुझे इस देह से क्या काम है।'

यों कहकर दधीचि पद्मासन बाँधकर बैठ गये। उनकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थिर हो गयी। मुख पर प्रकाश और प्रसन्नता विराज रही थी। उन्होंने हृदयाकाश में स्थित अग्निसहित वायु को धीरे–धीरे ऊपर की ओर उठाकर अप्रमेय परम पद ब्रह्म के स्वरूप में स्थापित कर दिया। इस प्रकार महात्मा दधीचि ने ब्रह्मसायुज्य प्राप्त किया। उनका शरीर निष्प्राण हो गया। यह देख देवताओं ने विश्वकर्मा से उतावलीपूर्वक कहा–'अब आप अभी बहुत से अस्त्र–शस्त्र बना डालिये।' विश्वकर्मा ने कहा–'देवताओं! यह ब्राह्मण का शरीर है। मैं इसका उपयोग कैसे करूँ। जब केवल इनकी हड्डियाँ रह जायँगी, तभी उनका अस्त्र निर्माण करूँगा।'

तब देवताओं ने गौओं से कहा–'हम तुम्हारा मुख वज्र के समान किये देते हैं। तुम हमारे हित के लिये अस्त्र–शस्त्र निर्माण करने के उद्देश्य से दधीचि के शरीर को क्षण भर में विदीर्ण कर डालो और शुद्ध हड्डियाँ निकालकर दे दो।' देवताओं के आदेश से गौओं ने वैसा ही किया। उन्होंने दधीचि के शरीर को चाट–चाटकर हड्डियाँ निकाल लीं और देवताओं को दे दीं। देवता उत्साह के साथ अपने लोक में चले गये और गौएँ भी अपने स्थान को लौट गयीं।

तदनन्तर बहुत देर के बाद दधीचि की सुशीला पत्नी हाथ में जल से भरा हुआ कलश ले फल और फूलों से पार्वती देवी की अर्चना और वन्दना करके अग्नि, पति तथा आश्रम के दर्शन की उत्सुकता से शीघ्रतापूर्वक पैर बढ़ाती हुई आयीं। उस समय उनके गर्भ में बालक आ गया था। आश्रम पर पहुँचने पर जब उन्होंने अपने स्वामी को नहीं देखा, तब बड़े विस्मय में पड़कर अग्नि से पूछा–'मेरे पतिदेव कहाँ चले गये?' अग्नि ने जो कुछ हुआ था, सब सुना दिया। पति की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनकर वे दुःख और उद्वेग से पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उस समय अग्निदेव ने ही उन्हें धीरे–धीरे आश्वासन दिया।

प्रातिथेयी बोलीं–मैं देवताओं को शाप देने में समर्थ नहीं हूँ, अतः स्वयं ही अग्नि में प्रवेश करूँगी। अब जीवन रखकर क्या होगा। संसार में जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह सब नश्वर है; अतः

1. शिव आदि पुराणों में वृत्रासुर को मारने के लिये वज्र के निर्माण हेतु देवताओं ने दधीचि की हड्डियों की याचना की थी। शायद कल्पभेद से ही कथाओं में किंचित अन्तर पाया जाता है।

उसके लिये शोक नहीं होना चाहिये। परंतु मनुष्यों में वे ही पुण्य के भागी होते जो गौ, ब्राह्मण तथा देवताओं के लिये अपने प्यारे प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं।[1] इस परिवर्तनशील संसार-चक्र में धर्मपरायण तथा शक्तिशाली शरीर पाकर जो प्राणी देवताओं तथा ब्राह्मणों के लिये अपने प्यारे प्राणों का त्याग करते हैं, वे ही धन्य हैं। जिसने देह धारण किया है, उसके प्राण एक न एक दिन अवश्य जायँगे-यह जानकर जो ब्राह्मण, गौ, देवता तथा दीन आदि के लिये इन प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, वे ईश्वर हैं।[2]

यों कहकर उन्होंने अग्नियों का यथावत् पूजन किया और अपना पेट चीरकर गर्भ के बालक को हाथ से निकाल दिया; फिर गङ्गा, पृथ्वी, आश्रम तथा आश्रम के वनस्पतियों और अन्न आदि ओषधियों को प्रणाम करके पति की त्वचा और लोम आदि के साथ चिता में प्रवेश करने का विचार किया। उस समय वे बोलीं-'मेरे गर्भ का यह बालक पिता-माता से हीन है, इसके कोई सगोत्र बन्धु भी नहीं हैं; अतः सम्पूर्ण भूतगण, ओषधियाँ तथा लोकपाल इसकी रक्षा करें। जो लोग माता-पिता से हीन बालक को अपने औरस पुत्रों के समान देखते और उसी भाव से रक्षा करते हैं, वे निश्चय ही ब्रह्मा आदि देवताओं के भी वन्दनीय हैं।'[3]

यों कहकर दधीचि की पत्नी ने बालक को पीपल के समीप रख दिया और स्वामी में चित्त लगाकर अग्नि को प्रणाम किया; फिर अग्नि की परिक्रमा करके यज्ञपात्रों के साथ ही चिता में प्रवेश किया और पतिसहित दिव्य लोक को चली गयीं। उस समय आश्रम के वनवासी वृक्ष भी रोने लगे। प्रातिथेयी और दधीचि ने उनका अपने पुत्रों की भाँति पालन किया था। मृग, पक्षी तथा वृक्ष सब रो-रोकर एक दूसरे से कहने लगे-'हम पिता दधीचि और माता प्रातिथेयी के बिना जीवित नहीं रह सकते। जो लोग स्वर्गवासी माता-पिता की संतानों पर निरन्तर स्वाभाविक स्नेह रखते हैं, वे ही पुण्यात्मा और कृतार्थ हैं। दधीचि और प्रातिथेयी हमें जिस स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा करते थे, वैसे सगे माता-पिता भी नहीं देखते। हमें धिक्कार है। हम पापी हैं, जो उनके दर्शन से वञ्चित हो गये। आज से हम सब लोगों का यही निश्चय होना चाहिये कि यह बालक ही हम लोगों के लिये दधीचि और प्रातिथेयी है, तथा यह बालक ही हमारा सनातन धर्म है।'

---

1. **उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके।**
   गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति प्राणान् प्रियान् पुण्यभाजो मनुष्याः।। (ब्रह्मपुराण 110/63)
2. **प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य यातारो वै नात्र संदेहलेशः।**
   एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनाद्यर्थं चैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते।। (ब्रह्मपुराण 110/65)
3. **ये बालकं मातृपितृप्रहीणं सनिर्विशेषं स्वतनुप्ररूढैः।**
   पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नूनं ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः।। (ब्रह्मपुराण 110/70)

यों कहकर वनस्पतियों और ओषधियों ने अपने राजा सोम के पास जाकर उत्तम अमृत की याचना की। सोम ने उन्हें बहुत उत्तम अमृत दिया और वनस्पतियों ने वह लाकर बालक को दे दिया। अमृत से तृप्त हुआ बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा। पीपल के वृक्षों ने उसका पालन किया था, इसलिये वह पिप्पलाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बड़ा होने पर पिप्पलाद ने पीपल के वृक्षों से अत्यन्त विस्मित होकर कहा–'लोक में यह देखा जाता है कि मनुष्यों से मनुष्य, पक्षियों से पक्षी तथा वनस्पतियों से वनस्पति उत्पन्न होते हैं; इसमें कहीं विषमता नहीं दिखायी देती। परंतु मैं वृक्ष का पुत्र होकर हाथ–पैर आदि विशिष्ट जीव कैसे हो गया!' उनकी बात सुनकर वृक्षों ने क्रमशः उनके पिता दधीचि की मृत्यु और पतिव्रता माता के अग्निप्रवेश का सब समाचार कह सुनाया। सुनते ही वे दुःख से व्याप्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय वृक्षों ने धर्म और अर्थयुक्त वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी। आश्वस्त होने पर उन्होंने ओषधियों और वनस्पतियों से कहा, 'जिन्होंने मेरे पिता की हत्या की है, उनका मैं भी वध करूँगा, अन्यथा जीवित नहीं रह सकता।'

तब वृक्षों ने कहा–महाद्युते! तुम्हारी माता ने परलोक में जाते समय यह उद्‌गार प्रकट किया था–'जो दूसरों के द्रोह में लगे रहते हैं, जो अपने कल्याण की बातें भूल जाते हैं तथा जो भ्रान्तचित्त होकर इधर–उधर भटकते हैं, वे नरक के गड्ढे में गिरते है।' माता की कही हुई बात सुनकर पिप्पलाद कुपित होकर बोले–'जिसके अन्तःकरण में अपमान की आग प्रज्वलित हो रही हो, उसके सामने साधुता की बातें व्यर्थ हैं।' फिर उन्होंने भगवान् चक्रेश्वर महादेव[1] के स्थान पर जाकर तप किया तथा प्रकट होने पर उनसे कहा–'मुझे तो शत्रुओं का नाश करने के लिये कोई शक्ति दीजिये।' पिप्पलाद के इतना कहते ही भगवान् शंकर के नेत्रों से भयंकर कृत्या प्रकट हुई। उसकी आकृति बडवा (घोड़ी) के समान थी। सम्पूर्ण जीवों का विनाश करने के लिये उसने अपने गर्भ में भयंकर अग्नि छिपा रक्खी थी। मृत्यु की लपलपाती हुई जीभ के समान वह महारौद्ररूपा भीषण कृत्या पिप्पलाद से बोली–'बताओ, मुझे क्या करना है?' पिप्पलाद ने कहा–'देवता मेरे शत्रु हैं। उन्हें खा जा।' फिर तो उस बडवा के गर्भ से महाभयंकर अग्नि प्रकट हुई, जो समस्त लोकों का प्रलय करने में समर्थ थी। देवता उसे देखते ही थर्रा उठे और पिप्पलाद द्वारा आराधित पिप्पलेश(चक्रेश्वर महादेव) नाम से प्रसिद्ध भगवान् शिव की शरण में आये। उन्होंने भयभीत होकर शिवजी की स्तुति करते हुए कहा–'शम्भो! आप हमारी रक्षा करें। कृत्या और उससे प्रकट हुई आग हमें बड़ा कष्ट दे रही है। सर्वेश्वर! आप भयभीत मनुष्यों को अभय देनेवाले हैं। शिव! जो सब ओर से सताये हुए, पीड़ित तथा श्रान्तचित्त प्राणी हैं, उन सबकी आप ही शरण हैं। जगन्मय! आप पिप्पलाद को शान्त कीजिये।'

'बहुत अच्छा' कहकर जगदीश्वर शिव ने पिप्पलाद के पास आकर उससे कहा–'बेटा!

1. चक्र तीर्थ में स्थित महादेव जिनकी आराधना से भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था।

देवताओं का नाश कर दिया जाय, तो भी तुम्हारे पिता लौटकर नहीं आयेंगे। उन्होंने देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये अपने प्राण दिये हैं। संसार में उनके समान दीन-दुखियों का दयामय बन्धु कौन होगा! तुम्हारी पतिव्रता माता भी उन्हीं के साथ दिव्यलोक में चली गयीं। यहाँ उनकी समता करने वाली कौन स्त्री है। क्या लोपामुद्रा और अरुन्धती भी उनकी बराबरी कर सकती हैं? जिनकी हड्डियों से सम्पूर्ण देवता सदा विजयी और सुखी बने रहते हैं, वे तुम्हारे पिता कितने शक्तिशाली थे! उन्होंने जिस उज्ज्वल सुयश-राशि का उपार्जन किया है, उसे तुम्हारी माता ने अपने दिव्य त्याग से अक्षय बना दिया है। तुम उन्हीं के पुत्र हो। उनसे बढ़कर तुमने अभीतक कुछ नहीं किया। तुम्हारे प्रताप और भय से आज देवता स्वर्ग से भ्रष्ट हो चुके हैं। वे सोच नहीं पाते कि हम किस दिशा को भागकर जायँ। तुम उन्हें बचाओ। अमरों की रक्षा करो। आर्त्त प्राणियों की रक्षा से बढ़कर पुण्य कहीं भी नहीं है। मनुष्यलोक में जबतक मनोहर यश फैला रहता है, तबतक एक-एक दिन के बदले एक-एक वर्ष के क्रम से दीर्घकालतक स्वर्गलोक में मनुष्य निर्विकार चित्त से निवास करते हैं। इस जगत् में वे ही मुर्दे के समान हैं, जिन्होंने यश का उपार्जन नहीं किया; वे ही अंधे हैं, जिन्होंने शास्त्र नहीं पढ़े। वे ही नपुंसक है, जो सदा दान नहीं देते तथा वे ही शोक के योग्य हैं, जो सदा धर्मपालन में संलग्न नहीं रहते।*

देवाधिदेव महादेवजी का यह वचन सुनकर पिप्पलाद मुनि शान्त हो गये। उन्होंने भगवान् शिव को नमस्कार किया और हाथ जोड़कर कहा-'जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा मेरे हित में संलग्न रहकर मेरा उपकार करते रहते हैं, उनका तथा अन्य लोगों का हित करने के लिये मैं देवता आदि के पूजनीय उमासहित भगवान् शंकर को प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने मेरी रक्षा की, हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, अपना सगोत्र और सहधर्मी बनाया, भगवान् शिव उनके मनोरथ पूर्ण करें। मैं बाल-चन्द्रमा का मुकुट धारण करनेवाले महादेवजी को नित्य प्रणाम करता हूँ। प्रभो! जिन्होंने माता-पिता की भाँति मेरा भरण-पोषण किया है, उनके नाम से तीनों लोकों के लिये यह तीर्थ हो। इससे उनका यश होगा और मैं उनके ऋण से उऋण हो जाऊँगा। पृथ्वी पर देवताओं के जो-जो क्षेत्र और तीर्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा इस तीर्थ(चक्रतीर्थ) का अधिक माहात्म्य हो। इस बात का यदि देवता लोग अनुमोदन करें तो मैं उनके अपराध क्षमा कर सकता हूँ।'

पिप्पलाद ने यह बात इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं के सामने कही और सबने आदरपूर्वक इसका समर्थन किया। बालक पिप्पलाद की बुद्धि, विद्या, शौर्य, बल, साहस, सत्यभाषण, माता-पिता के प्रति भक्ति तथा भाव-शुद्धि को जानकर शंकरजी ने उनसे कहा-'बेटा! जो तुम्हारा अभीष्ट हो, उसे

---

* **मृतास्त एवात्र यशो न येषामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये।**
ये दानशीला न नपुंसकास्ते ये धर्मशीला न त एव शोच्याः।। (ब्रह्मपुराण 110/156)

बताओ। वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। तुम अपने मन में अन्यथा विचार न करना।'

पिप्पलाद बोले–महेश्वर! जो धर्मनिष्ठ पुरुष गङ्गाजी में स्नान करके आपके चरणकमलों का दर्शन करते हैं, उन्हें समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हों, और शरीर का अन्त होने पर वे शिव के धाम में जायँ। नाथ! मेरे पिता और माता आपके चरणों में पड़े थे। ये पीपल और देवता भी आपके स्थान में आकर सुखी हुए हैं। ये सब लोग सदा आपका दर्शन करें और आपके ही धाम में जायँ।

पिप्पलाद की यह बात सुनकर देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनके भय से मुक्त हो इस प्रकार बोले–'ब्रह्मन्! तुमने वही किया है, जो देवताओं को अभीष्ट था। देवाधिदेव भगवान् शिव की आज्ञा का पालन किया और पहले वरदान भी दूसरों के ही लिये माँगा, अपने लिये नहीं; इसलिये हम भी संतुष्ट होकर तुम्हें कुछ देना चाहते हैं। तुम हमसे कोई वर माँगो।'

पिप्पलाद ने कहा–देवताओं! मैं अपने माता–पिता को देखना चाहता हूँ। मैंने केवल उनका नाम सुना है। संसार में वे ही प्राणी धन्य हैं, जो माता–पिता के अधीन रहकर उनकी सेवा–शुश्रूषा करते हैं। अपनी इन्द्रियों को, शरीर को, कुल, शक्ति और बुद्धि को माता–पिता के कार्य में लगाकर पुत्र कृतकृत्य हो जाता है। यदि मैं उनका दर्शन भी पा जाऊँ तो मेरे मन, वचन, शरीर और क्रियाओं का फल प्राप्त हो जायगा।

पिप्पलाद मुनि का यह कथन सुनकर देवताओं ने परस्पर सलाह करके कहा–'ब्रह्मन्! तुम्हारे माता–पिता दिव्य विमान पर आरूढ़ हो तुम्हें देखने के लिये आ रहे हैं। तुम भी निश्चय ही उन्हें देखोगे। विषाद छोड़कर अपने मन को शान्त करो। देखो, देखो वे श्रेष्ठ विमान पर बैठे आ रहे हैं। उनके दिव्य शरीर पर स्वर्गीय आभूषण शोभा पाते हैं।' पिप्पलाद ने भगवान् शिव के समीप अपने माता–पिता को देखकर प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्रों में आनन्द के आँसू भर आये थे। वे किसी तरह गद्गद कण्ठ से बोले–'अन्य कुलीन पुत्र अपने माता–पिता को तारते है; किंतु मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ, जो अपने माता के उदर को विदीर्ण करने में कारण बना।'

उस समय उसके माता–पिता ने कहा–'पुत्र! तुम धन्य हो, जिसकी कीर्ति स्वर्गलोकतक फैली है। तुमने भगवान् शंकर का प्रत्यक्ष दर्शन किया और देवताओं को सान्त्वना दी। तुम–जैसे पुत्र से पितरों के उत्तम लोक कभी क्षीण नहीं होते।' इसी समय पिप्पलाद के मस्तक पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। देवताओं ने जय–जयकार किया। पत्नीसहित दधीचि ने भी पुत्र को आशीर्वाद दिया और शंकर, गङ्गा तथा देवताओं को नमस्कार करके पिप्पलाद से कहा–'बेटा! विवाह करके भगवान् शिव की भक्ति और गङ्गाजी का सेवन करो। पुत्रों की उत्पति करके विधिपूर्वक दक्षिणासहित यज्ञों का अनुष्ठान करो और सब प्रकार से कृतार्थ हो दीर्घकाल के लिये दिव्यलोक में स्थान प्राप्त करो।'

पिप्पलाद ने कहा – पिताजी! मैं ऐसा ही करूँगा।

तदनन्तर पत्नीसहित दधीचि पुत्र को बारंबार सान्त्वना दे देवताओं की आज्ञा ले पुनः दिव्य लोक में चले गये। इसके बाद देवताओं ने भगवान् शिव से कहा – 'जगदीश्वर! अब दधीचि की हड्डियों की, हमारी तथा इन गौओं की पवित्रता के लिये कोई उपाय बताइये।' शिवजी ने कहा – 'गङ्गाजी में स्नान करके सम्पूर्ण देवता और गौएँ पापमुक्त हो सकती हैं। इसी प्रकार दधीचि के शरीर की हड्डियाँ भी गङ्गाजी के जल में धोने से पवित्र हो जायँगी।' शिवजी की आज्ञा के अनुसार देवता स्नान करके शुद्ध हो गये और हड्डियाँ धोनेमात्र से पवित्र हो गयीं।

तदनन्तर देवताओं ने पिप्पलाद से अनुमति ली और अपने – अपने निवासस्थान को चले गये। वहाँ जितने पीपल थे, कालान्तर में अक्षय स्वर्ग को प्राप्त हुए। प्रतापी पिप्पलाद ने उस क्षेत्र के अधिष्ठाता देवता के रूप में भगवान् शंकर की स्थापना करके उनका पूजन किया। फिर गौतम की कन्या को पत्नीरूप में प्राप्त करके कई पुत्र उत्पन्न किये, लक्ष्मी और यश का उपार्जन किया तथा अन्त में वे सुहृज्जनों के साथ स्वर्गलोक को चले गये।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'संक्षिप्त मार्कण्डेय – ब्रह्मपुराणांक' के ब्रह्मपुराण, पृ. 413 – 419, से ली गयी है)

❀❀❀❀❀❀

सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः।
सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।।

(संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक, गीताप्रेस, ब्राह्मख. चातुर्मास – माहात्म्य 2/18 पृ. 489 से उद्धृत)

एकमात्र सत्य ही परम धर्म है, एक सत्य ही परम तप है, केवल सत्य ही परम ज्ञान है और सत्य में ही धर्म की प्रतिष्ठा है।